शोधप्रकाशन-ग्रन्थमाला—६

पारमेश्वरागमः

भाषानुवाद-टिप्पणीसहितः

सम्पादकः

पण्डित व्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी-२२१००१

अनूदित एवं सम्पादित, सोलापूर, सन् १९०४ एवं १९०५। यहाँ टिप्पणियों में पाठभेद दिये गये हैं, उनका निर्देश **कटि.** संकेत से किया गया है।

ख. पारमेश्वरागम (कन्नड लिपि)। तन्त्रसंग्रह, शंकरप्पा अच्चप्पा टोपिगि, मैसूर सन् १९१४। यहां अनेक महत्त्वपूर्ण टिप्पणियाँ दी गई हैं। इन सबका समावेश यथास्थान टिप्पणियों में कर दिया गया है।

ग. जंगमवाड़ी मठ के ज्ञानमन्दिर का हस्तलेख।

पत्रसंख्या ११४ (गणनया), आकार १२.२ x ५.२, पंक्तिसंख्या प्रति पृष्ठ ९, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ४०, लिपि देवनागरी, आधार कागज, सम्पूर्ण। प्रारंभ में भगवान् शंकर के परिवार का सुन्दर चित्र है।

घ. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय का ८६११३ संख्या का हस्तलेख, पत्रसंख्या १२१ (गणनया), आकार १४ x ४.५, पंक्तिसंख्या, प्रतिपृष्ठ ९, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ३६, लिपि देवनागरी, आधार कागज, खंडित।

ङ. जंगमवाड़ी मठ के ज्ञानमन्दिर का हस्तलेख।

पत्रसंख्या २-१३६, आकार १२ x ४, पंक्तिसंख्या प्रतिपृष्ठ ८, अक्षरसंख्या प्रति पंक्ति ३७, लिपि देवनागरी, आधार कागज, खंडित। इसकी सहायता से अनेक स्थलों पर ग्रन्थ शुद्ध हुआ है।

प्रस्तुत आगम की दोनों मुद्रित प्रतियों में २२ ही पटल हैं, किन्तु जंगमवाड़ी मठ के दोनों तथा सरस्वती भवन पुस्तकालय के हस्तलेख में २३वां पटल भी उपलब्ध है। यहां पहले के प्रत्येक पटल में लगभग १०० श्लोक हैं, किन्तु इस २३वें पटल में केवल २३ श्लोक ही हैं। इसका विषय भी अधूरा लगता है। अभी इस विषय में अधिक कुछ कहा नहीं जा सकता।

प्रत्येक पटल के आरम्भ और अन्त में विषय की सूचना दी गई, किन्तु इसके अतिरिक्त भी विषय इनमें मिलते हैं। अत: पाठकों की सुविधा के लिये यहां पूरे ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। उचित स्थलों पर जिज्ञासु पाठकों की और विशेष कर अनुसन्धाताओं की सहायता के लिये आवश्यक टिप्पणियां भी दी जा रही हैं। देवी और ईश्वर के संवाद के रूप में यह आगम प्रस्तुत हुआ है। आठ भैरवों के नामों में 'रुरु' के स्थान पर 'गुरु' (१०.४८), सभ्य और आवसथ्य अग्नियों के नामों के स्थान पर सव्यावसव्य (१३.२१)— इस तरह की त्रुटियां प्रस्तुत आगम की मुद्रित और हस्तलिखित सभी प्रतियों में समान रूप से मिलती हैं। उनका यहाँ टिप्पणी या मूल में परिमार्जन कर दिया गया है।

प्रथम पटल में प्रधानत: विभिन्न मतवादों का निरूपण किया गया है। यहाँ सौगत, वैदिक, सौर और वैष्णव नामक चार मुख्य मतवादों के पांच-पांच भेद वर्णित हैं। सौगत मत के पांच भेदों में बौद्ध, सौगत, चार्वाक, जैन और आर्हत मतों का समावेश है। वैदिक मत का कोई भेद प्रदर्शित नहीं है। सौर मत के वैकर्तन, आदित्य, पौष्ण, मार्तण्ड और सौर नामक पाँच भेद तथा वैष्णव मत के गोपाल, नारसिंह, राम, कृष्ण और नारायण नामक पाँच भेद प्रदर्शित हैं। इन मतों के मुख्य ग्रन्थों का भी यहाँ निर्देश किया गया

है। आगे सप्तविध शैवमत[3], सप्तविध गाणपत्य मत[4] और षड्विध[5] दर्शनों के भी नाम दिये गये हैं। तब शैव, पाशुपत, सोम और लाकुल नामक [6]चतुर्विध शैवों का नामोल्लेख कर ऊपर प्रदर्शित शैवों के सात भेदों का पुनः परिगणन किया गया है। वैष्णव, शाक्त आदि भेदों का भी उल्लेख कर यहाँ बताया गया है कि अपने इष्टदेव की उपासना अपने मत में प्रदर्शित पद्धति से ही करनी चाहिये। परस्पर एक दूसरे की विधि को मिलाना नहीं चाहिये। आगमिक पद्धति से यहाँ पंचाक्षर मन्त्र का [7]उद्धार भी किया गया है।

आगे देवी इन मतों की विशिष्टता के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् शिव वीरशैव मत की अपनी [8]विशिष्टता का और साथ ही भस्म, रुद्राक्ष और इष्टलिंग के धारण की महिमा का वर्णन करते हैं। देवी के प्रश्न करने पर वे वीरपद की निरुक्ति बताते हैं और कहते हैं कि बिना दीक्षा के लिंगधारण नहीं करना चाहिये। वीरशैव मत के उत्कर्ष के साथ पंचाक्षर मन्त्र और इष्टलिंग की महिमा का वे पुनः वर्णन करते हैं। देवी के पूछने पर शिवलिंग की पूजा का विधान बताते हुए वे शिवयोगी और शिवालय के शिखर (१.१०५) के दर्शन की महिमा का और चतुर्विध कैवल्य (१.१०८) का निरूपण करते हैं। आगे के पटलों में इन्हीं विषयों का विस्तार किया गया है।

द्वितीय पटल में प्रधानतः इष्टलिंग, सज्जिका, शिवदोरक आदि के निर्माण की विधि बताई गई है। सर्वप्रथम शिव लिंगतत्त्व का निरूपण करते हैं और पाषाण आदि से निर्मित लिंगों के भेदों को बताते हुए स्थिर और चर लिंगों का लक्षण बताते हैं। वे कहते हैं कि इष्टलिंग की पूजा करने वाले सर्वश्रेष्ठ हैं। पूर्व प्रदर्शित (१.१०८) चतुर्विध कैवल्य के समान यहाँ (२.३१-३२) चतुर्विध मुक्ति निरूपित है। आगे चरलिंग की रक्षा

---

३. चन्द्रज्ञानागम (१.१०.४-३४) में अष्टविध शैवों का निरूपण है। सूक्ष्मागम (७.४-२८) में पहले सप्तविध शैवों का परिचय देकर आठवें भेद वीरशैव का और उसके भेदोपभेदों का विवरण अलग से दिया है। प्रस्तुत आगम में सात ही भेद वर्णित हैं। विषय एक होते हुए भी इनकी प्रतिपादन शैली भिन्न है। इन सब पर स्वतन्त्र निबन्ध में विचार किया जा सकता है।

४. मृगेन्द्रागम चर्यापाद (१.३६-४१) में शैव, मान्त्रेश्वर, गाणपत्य, दिव्य, आर्ष, गौह्यक, योगिनीकौल और सिद्धकौल नामक आठ अनुस्रोतों का विवरण मिलता है।

५. षड्विध दर्शनों के नाम वायुपुराण (१०४.१६) में भी देखे जा सकते हैं। शक्तिसंगम तन्त्र के प्रथम खण्ड (२.८५-८८) में तारा, त्रिपुरा और छिन्ना महाविद्याओं में से प्रत्येक के छः-छः दर्शनों के नाम मिलते हैं।

६. वामनपुराण (६.८६-९१) में शैव, पाशुपत, कालामुख और कापालिक नामक चार प्रकार के शैवों और उनके प्रवर्तक आचार्यों की नामावली दी गई है। शिवपुराण, ब्रह्मसूत्रभाष्यटीका आदि में भी पाठभेदों के साथ इनका वर्णन मिलता है। अनेक आधुनिक लेखकों ने इनका परिचय दिया है। आगम और तन्त्रशास्त्र के इतिहास में प्रकाशित होने वाले पाशुपत मत संबन्धी लेख में हमने इन पर विशेष विचार किया है। तदनुसार लाकुल का कालामुख और सोम का कापालिक मत में समावेश किया जा सकता है।

७. मन्त्रोद्धार की यह सूक्ष्म पद्धति है। आगे (११.३०-३१) इसकी स्थूल विधि भी बताई गई है। इसकी अनेक विधियां शास्त्रों में प्रचलित हैं। सभी तन्त्रागम सम्प्रदायों में ये विधियां मान्य हैं। "तन्त्राभिधान" नामक ग्रन्थ में इन विधियों के संग्रह का प्रयत्न किया गया है।

८. वीरशैव मत के प्रायः सभी आगमों और ग्रन्थों में यह विषय संक्षेप अथवा विस्तार से मिलता है। प्रस्तुत आगम में भी इस विशिष्टता पर विभिन्न स्थलों में प्रकाश डाला गया है।

के प्रकार, सज्जिका और शिवदोरक का लक्षण एवं सज्जिका-शिवसूत्र संयोजन का प्रकार बताकर कहा गया है कि दीक्षा के लिये गुरु की सहायता लेना आवश्यक है। यहाँ गुरु के और शिष्य के लक्षणों को बताकर दीक्षाक्रम के प्रदर्शन के साथ शिष्य के कर्तव्यों को भी बताया गया है। इष्टलिंग के [९]नष्ट हो जाने पर क्या करना चाहिये, यह बताते हुए यहाँ कहा गया है कि गुरुप्रदत्त इष्टलिंग को यावज्जीवन धारण करना चाहिये। दीक्षागुरु का परित्याग यहाँ निन्दनीय माना गया है।

तृतीय पटल में दीक्षाविधि का विस्तार से निरूपण किया गया है। मण्डप-निर्माण की विधि को बताकर यहाँ यजमान के कर्तव्यों का और पंच कलशार्चन आदि की पद्धति का निरूपण कर दीक्षाक्रम, लिंगार्चन, पूजोपयोगी पुष्प, पूजाविधि, सज्जिका-गुण संस्कार का विवरण देते हुए दीक्षित के लिये पालनीय नियमों का निरूपण किया गया है। प्रसंगवश यहाँ (३.७३-७५) घंटानाद की महिमा वर्णित है। अभिषेक विधि को बताते हुए यहाँ यजमान के लिये करणीय चतुर्थ दिन के कृत्यों का निरूपण है। अन्त में शिवयोगी के लिये पालनीय नियमों का वर्णन कर लिंग, विभूति और रुद्राक्ष की महिमा[१०] बताई गई है।

चतुर्थ पटल में दीक्षांग होम का विस्तार से वर्णन है। प्रारंभ में यहाँ त्रिविध स्थण्डिलों और पंचविध कुण्डों का स्वरूप बताया गया है। होम की पद्धति को बताते हुए यहाँ अग्नि के वीक्षण आदि आठ संस्कारों का, [११]अग्निस्थापन की विधि का, अग्नि के स्वरूप और ध्यान का, रुद्रस्वरूप अग्नि के ध्यान का और अग्नि के जातकर्म आदि संस्कारों का निरूपण कर, [१२]अग्नि की सात जिह्वाओं का और उनमें दी जाने वाली आहुतियों का प्रयोजन बताकर कुण्ड की मेखलाओं में पूजनीय ५३ देवताओं का क्रम प्रदर्शित है। यहाँ (४.५४) तिरपन देवताओं की पूजा स्पष्ट वर्णित है, अतः इन्द्र आदि आठ दिग्पालों की पूजा का विधान अनावश्यक है और यह पंक्ति सर्वत्र मिलती भी नहीं है। आगे अग्नि की प्रार्थना, परिधि-परिस्तरण, यज्ञपात्रस्थापन, होमविधान आदि की पूरी प्रक्रिया वैदिक पद्धति का अनुसरण करती है।

पंचम पटल में लिंगधारण दीक्षा का विस्तार से वर्णन है। पहले सज्जिका, शिवदोरक और इष्टलिंग के संयोजन का क्रम बताया गया है। इष्टलिंग की स्तुति और लिंग के अभिषेक की विधि को बताकर यहाँ विभूतिधारण, रुद्राक्षधारण, गुरुपूजन, मन्त्रोपदेश आदि का निरूपण किया गया है। कामना के भेद से इष्टलिंग के धारण के विभिन्न स्थानों का निर्देश करते हुए यहाँ बताया गया है कि दीक्षा प्राप्त कर लेने के बाद शिष्य इष्टलिंग का नित्य नियमपूर्वक पूजन करे। यहाँ बताया गया है कि वीरशैव दीक्षा के बाद स्त्री-पुरुष, जाति-धर्म, वर्णाश्रम-धर्म आदि के भेद सर्वथा वर्जनीय हो जाते हैं। इष्टलिंग की पूजा का वर्णन कर कहा गया है कि इष्टलिंगधारियों में किसी भी

---

९. इस विषय में प्रस्तुत आगम में अधिकारी के भेद से विभिन्न व्यवस्थाएं दी गई हैं। निराभारी वीरशैव के लिये इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर प्राणत्याग ही उचित है।

१०. इन विषयों पर भी सभी आगमों और शैव पुराणों में पर्याप्त विवरण मिलता है। यहाँ भी अनेक स्थलों पर यह विषय वर्णित है।

११. अग्निकार्य-विधान का विवरण चन्द्रज्ञानागम (१.११.४७-५७) में भी देखिये।

१२. शिवाग्नि की सात जिह्वाओं का वर्णन मकुटागम (१.२.२४-३३) में भी है।

प्रकार की भेददृष्टि वर्जित है। नित्य, नैमित्तिक और काम्य पूजा भी यहाँ वर्णित है। दीक्षा के उपरान्त व्यक्ति शिवभक्त जंगमों की पूजा करे और उसके लिये बताये गये नियमों का भी पालन करे। उसके लिये काम्यार्चन की विधि बताने के साथ अतिथि-सत्कार, जंगम-पूजन, अनाथों की सहायता आदि की आवश्यकता बताते हुए शिवयोगियों के लिये पालनीय नियमों का और वीरशैव मत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन पुनः किया गया है।

छठे पटल में षट्स्थलों का स्वरूप प्रदर्शित है। एक ही परमानन्दस्वरूप परमात्मा कैसे षट्स्थलों का स्वरूप धारण कर लेता है ? इसका निरूपण करते हुए यहाँ क्रमशः भक्त, माहेश्वर, प्रसादी, प्राणलिंगी, शरण और ऐक्य नामक छः स्थलों का स्वरूप विस्तार से बताकर इनके ज्ञान की महिमा निरूपित की गई है। आगे महेश्वर के सर्वज्ञता आदि छः अंगों की षड्विध स्थलों में योजना का प्रकार बताकर भक्ति, कर्मक्षय, बुद्धि, विचार, दर्पक्षय और सम्यग्ज्ञान नामक षड्विध उपांगों के भी लक्षण बताये गये हैं। तब समस्त अंगों और उपांगों के परस्पर संबन्ध को बताकर प्रसंगवश षड्विध ऊर्मियों और अरिषड्वर्ग का भी विवरण देकर कहा गया है कि ऊपर वर्णित सभी विषयों का जिसको सम्यग् ज्ञान है, मुक्ति उसके हाथ में आ जाती है। आगे अनेक श्लोकों में शिव की स्तुति की गई है, जिसमें शिव के ऊपर वर्णित सभी स्थलों, अंगों और उपांगों को शिवस्वरूप ही माना गया है। अन्त में इस स्तुति को स्तवराज की संज्ञा देकर उसकी फलश्रुति वर्णित है।

सातवें पटल में प्रधानतः पूर्व निर्दिष्ट सात प्रकार के शैव मतों का स्वरूप विस्तार से बताया गया है। यहाँ अनादिशैव, आदिशैव, अनुशैव, महाशैव, योगशैव और ज्ञानशैव नामक छः मतों का लक्षण और स्वरूप बताकर कहा गया है कि सोपान के क्रम से एक के बाद दूसरे मत को ग्रहण करना चाहिये। ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की भी यहाँ संक्षेप में चर्चा है। साथ ही उक्त सभी मतों की समानता और असमानता को भी दिखाया गया है। इतना बता देने के बाद वीरशैव मत का स्वरूप निदर्शित कर अपेय-पान, अभक्ष्य-भक्षण आदि को इनके लिये निषिद्ध माना गया है। अतिथि-सत्कार पर यहाँ विशेष जोर दिया गया है। बाद में अष्टावरणों का निर्देश कर इष्टलिंगधारी के लिये पालनीय नियमों की चर्चा कर पुष्प-संग्रह का और पूजा का प्रकार बताया है और कहा है कि वीरशैव को इष्टलिंग की सेवा में ही अपना समय बिताना चाहिये। वीरशैव मत की श्रेष्ठता को बताकर कहा गया है कि शिव की पूजा पूरी सावधानी से करनी चाहिये। अन्त में वीरशैव के [१३]लक्षणों का निरूपण किया गया है।

आठवें पटल में वीरशैव मत के आचारों का विशेष रूप से वर्णन है। देवी वीर पद की व्युत्पत्ति और उसके अर्थ को जानना चाहती है, तब शिव विस्तार से इस प्रश्न का समाधान करते हैं। ब्रह्मचर्य के स्मृति-संमत अर्थ का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि इस ब्रह्मचर्य का पालन शिवयोगी के लिये आवश्यक है। आगे वीरशैव व्रत का निरूपण करते समय भस्मधारण की विधि विस्तार से बताई गई है। यहाँ कहा गया है कि भस्मधारण करने के बाद हाथ नहीं धोना चाहिये। वीरशैव के लिये पंचाक्षर मन्त्र

१३. इसके लिये मूल ग्रन्थ (७.९८-१०३) तथा (८.७-२१) देखिये।

का जप भी आवश्यक है। शिव की, इष्टलिंग की, आत्मा की और गुरु की एकता की भावना की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए यहाँ बारह श्लोकों की स्तुति दी गई है और कहा गया है कि शिव का ध्यान करते हुए उषःकाल में इष्टलिंग का पूजन करना चाहिये। प्रसंगवश यहाँ प्राणियों की श्रेष्ठता का क्रम बताया गया है। आगे वीरशैव की चर्या के प्रसंग में कहा गया है कि कल्याण-मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति का कभी भी अधःपतन नहीं होता। इसी भाव के वचन [१४]गीता में भी उपलब्ध हैं। पूजा के काल का निरूपण करते हुए यहाँ जंगम की भिक्षा के नियमों का उल्लेख कर कहा गया है कि गृहस्थ को जंगम का सत्कार पूरे मनोयोग से करना चाहिये।

नवें पटल में वीरशैव मत की महिमा बताई गई है। कहा गया है कि काशी में मरणमात्र से जैसे मुक्ति मिल जाती है, उसी तरह से वीरशैव मत में प्रवेशमात्र से मुक्तिलाभ हो जाता है। अन्य मतों में स्खलित व्यक्ति वीरशैव मत में आकर शुद्ध हो जाता है, क्योंकि यहाँ प्राणिहिंसा आदि पूरी तरह से वर्जित हैं। वीरशैव को विषयों के प्रति कभी आकृष्ट नहीं होना चाहिये और अपने मत के प्रति पूरी आस्था एवं भक्ति रखनी चाहिये। बिना योग्यता अर्जित किये एकाएक किसी का वीरशैव मत में प्रवेश वर्जित है। इतना सब बता देने के बाद यहाँ चतुर्थाश्रम में प्रविष्ट संन्यासी और वीरशैव जंगम की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है कि वीरशैव मत में प्रविष्ट व्यक्ति कैसे अनायास मुक्तिलाभ कर लेता है। वीरशैव मत में स्थित जंगमों के विशेष लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि अपने मत के प्रति दृढ निष्ठा वाला व्यक्ति ही शिवपद को प्राप्त कर सकता है। आगे वीरशैव मत की महिमा का गान करते हुए कहा गया है कि वीरशैव व्रत का पालन करने वाले को पूरी सावधानी बरतनी चाहिये। विभिन्न शैव मतों का आश्रय लेते समय सोपान-क्रम की पहले चर्चा हुई है। यहाँ पुनः बताया गया है कि यह सोपान-क्रम क्या है ? पटल के अन्त में अवधूत वीरशैव की चर्या का सहज योग की पद्धति से वर्णन किया गया है।

दसवें पटल में योग का विधान निरूपित है। प्रथमतः देवी अनादिशैव आदि चार मतों की विधियों को निरूपित कर बाद में योगशैव मत के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् शिव द्विविध योगशैवों का स्वरूप बताते हैं। इसी प्रसंग में आसन और ध्यानपद्धति का वर्णन करते हुए यहाँ दिव्य सिंहासन की, उस पर विराजमान उमा सहित (सोम) शिव के ध्येय स्वरूप की और आवरण देवताओं की ध्यानपद्धति बताई गई है। आठ भैरवों की नामावली में सर्वत्र 'रुरु' के स्थान पर 'गुरु' नाम मिलता है। इससे सूचित होता है कि लिपिकार आठ भैरवों की नामावली से अपरिचित थे, जो कि वीरशैवों के लिये स्वाभाविक है। ध्यानपद्धति के बाद यहाँ योग के आठ अंगों का निरूपण किया गया है। ये योगांग अन्यत्र वर्णित योगांगों से पूरी तरह से भिन्न हैं। योगशैवों की योगपद्धति को बताने के बाद ध्यानशैवों और वीरशैवों की योगपद्धति वर्णित है। वीरशैव योगियों के [१५]पर्यायवाची शब्दों को बताकर इन योगियों के लिये विशेष नियम यहाँ बताये गये

१४. शिवागम सौरभ (कन्नड़ ग्रन्थ) के अनुबन्ध (पृ. ५७-६७) में तथा लिंगधारणचन्द्रिका के अतिविस्तृत अंग्रेजी उपोद्घात (पृ. २४६-२५५) में पारमेश्वरागम और भगवद्गीता के श्लोकों की तुलनात्मक तालिका दी गई है।

१५. "अवधूतश्च संन्यासी.....वीरशैवस्य योगिनः" (१०.६७-६८)।

हैं और उनके लिये षडंगों (१०.७२) का विधान किया गया है। दया की महिमा बताते हुए अन्त में यहाँ पंचाक्षर मन्त्र का माहात्म्य वर्णित है।

पूर्व पटल के अन्त में पंचाक्षरी मन्त्र के जप की महिमा गाई गई थी। अब इस **ग्यारहवें पटल में** पंचाक्षरी मन्त्र के जप की पूरी विधि विस्तार से बताई गई है। पंचाक्षर और षडक्षर मन्त्र का स्वरूप तथा प्रणव की महिमा बताते हुए षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य भी यहाँ वर्णित है। इसके बाद पंचाक्षर मन्त्र के उद्धार की [१६]स्थूल विधि बताई गई है। इसके प्रत्येक अक्षर के उद्धार की सूक्ष्म विधि पहले (१.३४-३५) बता दी गई है। इसी प्रसंग में यहाँ पंचाक्षरी विद्या का ध्यान (स्वरूप) वर्णित है और इस विद्या के वर्णों एवं बीजों को; ऋषि, देवता और छन्द को; वर्णों के अधिपतियों और स्थानों को तथा पंचाक्षरी मनु (मन्त्र) के पर्यायवाची शब्दों को बताया गया है। पंचाक्षरी विद्या के षडंगों का भी यहाँ निरूपण है। आगे मन्त्र के प्रत्येक वर्ण के न्यास का प्रकार और शिव का ध्यान वर्णित है। यह विषय अन्य आगमों में भी संक्षेप अथवा विस्तार से प्रायः सर्वत्र मिलता है। पूजा, जप, होम आदि में सर्वत्र इसी मन्त्र का उपयोग किया जाता है। आगे यहाँ तन्त्र का संग्रह, अर्थात् पूजाविधि के विस्तार के लिये तन्त्रान्तरों में बताई गई सारी पद्धति को संक्षेप में बताने के लिये मन्त्रग्रहण से पहले गुरु की सेवा करना, गुरु द्वारा शिष्य की षडध्वशुद्धि, मन्त्रोपदेश, मन्त्रपुरश्चर्या आदि का विधान बताया गया है। जप की विधि को और [१७]भूतशुद्धि आदि की प्रक्रिया को समझाते हुए यहाँ जप के त्रिविध और पंचविध भेदों का स्वरूप समझा कर कहा गया है कि इनमें से जप के किसी एक प्रकार को ग्रहण करना चाहिये। इसी प्रसंग में जपमाला, अंगुलिमाला और जपस्थान का विवेचन कर पंचाक्षरी मन्त्र के जप की महिमा बताई गई है। जपसंख्या के भेद से फल की विशेषता को बताकर अन्त में कहा गया है कि मन्त्रजप से शिवपुर की प्राप्ति होती है।

दसवें पटल में योग का सामान्य विधान वर्णित हुआ है। अब इस **बारहवें पटल** में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग का स्वरूप बताया जा रहा है। प्रथमतः ज्ञान और योग (कर्म) की परस्पर सापेक्षता वर्णित है। इससे ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद की पुष्टि होती है। कर्म बाह्य और आन्तर के भेद से दो प्रकार का है। [१८]त्रिविध और पंचविध बाह्य कर्म का निरूपण कर बाद में आन्तर कर्म के विषय में बताया गया है कि यह बाह्य कर्म की अपेक्षा श्रेष्ठ है। शिवधर्म का पालन करने वालों के [१९]आठ लक्षणों को बताकर

---

१६. ऊपर की सातवीं टिप्पणी देखिये।

१७. भूतशुद्धि और प्राणप्रतिष्ठा का विशेष विवरण हमारे "देवो भूत्वा यजेद् देवान्" शीर्षक निबन्ध में देखिये। इसका प्रकाशन "निगमागमीयं संस्कृतिदर्शनम्" (पृ. १५१-१६४) में हुआ है। इसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद डॉ. आन्द्रे पादु के अभिनन्दन ग्रन्थ (रिचुअल एण्ड स्पेक्युलेशन इन अर्ली तान्त्रिज्म, पृ. १२०-१३८) में हुआ है (स्टेट युनिवर्सिटी आफ न्यूयार्क, सन् १९९२)।

१८. वाङ्मनःकायभेदेन त्रिधा, तपः कर्म जपो ध्यानं ज्ञानं चेति पञ्चधा (१२.१३-१९)। शिवपुराण वायवीय संहिता (२.१०.४७-४८) से तुलना कीजिये।

१९. "शिवभक्तेषु वात्सल्यं......एतदष्टगुणं चिह्नं" (१२.२६-२८) तथा (१७.८३-८५)। शिवपुराण वायवीय संहिता (२.१०.६८-७१) से तुलना कीजिये।

कहा गया है कि ये लक्षण यदि म्लेच्छ में भी मिलते हैं, तो वह भी शिवस्वरूप ही माना जाता है। यहाँ भक्ति की प्रधानता मानी गई है। भक्ति के लक्षणों और भेदों को बताकर उसकी महिमा बताई गई है। शिवयोगियों की चर्या और उनकी महिमा भी वर्णित है। शिवधर्म के ज्ञान, क्रिया, चर्या और योग नामक चार मार्गों का स्वरूप बताते हुए कहा गया है कि इस शिवमार्ग का अनुसरण शिवज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। पंचाक्षर मन्त्र की इसमें सर्वोपरि उपयोगिता है। चन्द्रज्ञानागम (१.१.१०-१३) और कूर्मपुराण (२.१-११) में स्थित ईश्वरगीता के ६-७ अध्यायों की पद्धति से यहाँ पति, पशु और पाश का स्वरूप वर्णित है और बताया गया है कि त्रिविध पाशों के छेदन के लिये वीरशैव-दीक्षा आवश्यक है। जीवों की श्रेष्ठता का क्रम बताते हुए कहा गया है कि शिवनाम का स्मरण पाशों को काटने का सर्वोत्तम उपाय है। इसके लिये श्रद्धा अपेक्षित है। श्रद्धा के रहने पर ही भक्ति का उदय होता है और भक्तिसम्पन्न व्यक्ति ही वीरशैव-दीक्षा का अधिकारी बन पाता है। इस प्रकार यहाँ कर्म, ज्ञान और भक्ति का निरूपण कर अन्त में सभी प्रकार के शैवों के लिये पालनीय सामान्य सदाचार तथा वीरशैवों के लिये विशेष सदाचारों का निरूपण किया गया है।

तेरहवें पटल में प्रधानत: करपंकज पर इष्टलिंग की पूजा का विधान वर्णित है। प्रथमत: यहाँ अन्य पीठों की अपेक्षा पाणिपीठ की विशेषता बताई गई है। पाणिपीठ का स्वरूप बताते हुए यहाँ कहा गया है कि हाथ की पांच अंगुलियों में पंचब्रह्म और पंचाग्नि की भावना करनी चाहिये। पाणिपीठ की कमल के रूप में भावना कर उसमें समस्त देवताओं और शास्त्रों की भावना का विधान बताकर इस करपंकज में इष्टलिंग की पूजा का क्रम, पालनीय नियम और उनकी महिमा बताई गई है। इष्टलिंग के अभिषेक का, उसके लिये आवश्यक पात्रों का और अभिषेकार्ह जल का विधान बताकर अभिषेक के बाद की पूजा के क्रम को बताते हुए कहा गया है कि इष्टलिंग की पूजा करते समय शिवभक्त को बीच में उठना नहीं चाहिये। करपीठ पर इष्टलिंग की पूजा का अनन्तगुणित फल मिलता है, इतना बताकर यहाँ कहा गया है कि पूजा का क्रम गुरुमुख से ही जानना चाहिये। इस करपीठ में सभी देवता और तीर्थ निवास करते हैं (१३.७३), यह बताकर यहाँ पटल समाप्ति पर्यन्त विस्तार से पाणिपंकज पर पूजा की महिमा गाई गई है।

चौदहवें पटल में दो विषय मुख्यत: वर्णित हैं— एक तो अष्टबन्ध (स्थावर) लिंग का लक्षण और दूसरे गुरु की उपासना का क्रम। पंचसूत्र-प्रमाण लिंग का विधान पहले भी बताया जा चुका है। उसी का यहाँ पुन: निरूपण हुआ है। साथ ही यहाँ लिंग के सखंड, अखंड आदि भेदों का स्वरूप बताकर कहा गया है कि अपनी योग्यता के अनुसार इनकी उपासना करनी चाहिये। भक्ति का इसमें विशेष स्थान है। इष्टलिंग के प्रमाण को और उसके धारण करने की विधि को बताकर यहाँ कहा गया है कि धारित लिंग के नष्ट हो जाने पर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। पूजोपयोगी पात्रों का तथा शिवपात्र का लक्षण बताकर कहा गया है कि इन पात्रों में तीर्थों का आवाहन करना चाहिये। बिना आधार के पात्रों का पूजा में उपयोग वर्जित है, अत: यहाँ इन आधारों की भी चर्चा की गई है। इतना बता देने के बाद यहाँ पाणिलिंग की पूजा के नियम

वर्णित हैं। कामना के अनुसार पूजा की दिशा का भी यहाँ निर्देश है। इष्टलिंग के निर्माण और पूजा का सारा विधान बताने के बाद यहाँ कहा गया है कि गुरु और देवता की अभिन्न रूप में भावना करनी चाहिये। इसके बाद सद्गुरु के स्मरण, पूजन, ध्यान आदि का विधान बताकर श्रीगुरु की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। सद्गुरु की उपासना से संबद्ध यहाँ के कुछ श्लोक गुरुगीता में भी उपलब्ध हैं।

पन्द्रहवें पटल में वीरशैवों के त्रिविध भेदों का निरूपण है। यहाँ देवी भगवान् से अन्य मतों की अपेक्षा वीरशैव मत की अपनी विशेषताओं के विषय में प्रश्न करती है। भगवान् देवी के इस प्रश्न की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि वीरशैव मत के रहस्य को न जानने वाले मनुष्य इस संसार में ही डूबते-उतराते रहते हैं। वीरशैव मत की विशेषताओं को बताते हुए वे पहले वीरशैवों के अधिकार-भेद से होने वाले जिन तीन भेदों का उल्लेख करते हैं, वे हैं— सामान्य वीरशैव, विशेष वीरशैव और निराभारी वीरशैव[२०]। बाद में यहाँ क्रमशः इन तीनों के लक्षणों का विस्तार से निरूपण हुआ है। इसके बाद कहा गया है कि इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर निराभारी वीरशैव को प्राणत्याग कर देना चाहिये। निराभारी व्रत को स्वीकार कर उसको छोड़ देने वाला पाप का भागी होता है और इसका पालन करने वाला शिवस्वरूप को प्राप्त कर सदा आनन्दसागर में लीन रहता है। इसीलिये निराभारी के लिये पालनीय नियमों का इस पटल के अन्तिम भाग में विस्तार से वर्णन है।

सोलहवें पटल के प्रारंभ में षड्विध लिंगों का वर्णन है। भगवती पारद आदि से निर्मित लिंगों के विषय में प्रश्न करती है और भगवान् प्रश्न का उत्तर देते हुए स्थिर, चर, स्थिरचर, चरस्थिर, स्थिरस्थिर और चरचर नामक छः प्रकार के लिंगों का निर्देश करते हैं। यहाँ पंचविध लिंगों का तो नामोल्लेखपूर्वक वर्णन मिलता है, किन्तु स्थिरस्थिर नामक लिंग का विवरण उपलब्ध नहीं होता। ऐसा लगता है कि "चराचरात्मकं विश्वम्" (१६.२१-२२) इत्यादि श्लोकों में लिंगतत्त्व के रूप में उसीका वर्णन हुआ है। इस प्रकार षड्विध लिंगों का निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि प्रपंच (जगत्), लिंग और देह में साधक को कोई भेद नहीं करना चाहिये। आगे संक्षेप में निराभारी की चर्या को बताकर पुनः पंचसूत्र-प्रमाण लिंग की संक्षिप्त चर्चा है। अलग-अलग रंग के शिवसूत्र (दोरक) का अलग-अलग फल होता है, यह बताकर आगे कहा गया है कि समर्थ व्यक्ति ही निराभारी वीरशैव व्रत में प्रवेश करे। निराभारी के द्वारा पालनीय नियमों का विस्तार से वर्णन करने के बाद यहाँ कहा गया है कि इसके लिये सबसे कठिन व्रत यह है कि इसको इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर देह-त्याग करना पड़ता है। यह किसी की अगवानी नहीं करता, किसी को प्रणाम नहीं करता। ऐसे निराभारी शिवयोगी की सेवा-शुश्रूषा अनन्त फलदायक मानी गई है। इस निराभारी शिवयोगी की पर्यन्तावस्था में प्रकट होने वाले लक्षणों का भी यहाँ वर्णन किया गया है और कहा गया है कि इनका पूजन करने वाले को अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। पटल के अन्त में तुर्यवीर व्रत की प्रशंसा की गई है।

२०. इन त्रिविध वीरशैवों का निरूपण सूक्ष्मागम (७.३०-७९) तथा चन्द्रज्ञानागम (१.१०.३५-४८) में भी मिलता है। चन्द्रज्ञानागम (१.१०.४२-४४) में स्वतन्त्र और वैदिक के रूप में निराभारी के भी दो भेद किये हैं।

सत्रहवें पटल में वीरशैव ब्राह्मण की दिनचर्या निरूपित है। अनादि और आदि मत को छोड़कर यहाँ शेष शुद्धशैव आदि पांच मतों का स्वरूप बताकर तुर्य वीरशैव की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए शैवागम-संमत ३६ तत्त्वों का[२१] निरूपण किया गया है। विरक्त शैवों के दस गुणों का परिगणन भी यहाँ (१७.३३-३४) किया गया है। देवी के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव शैवों के द्वारा प्रति दिन संपादनीय कार्यों (आह्निकों)[२२] का निरूपण करते हुए स्नानविधि, भस्मनिर्माणविधि, भस्मधारणविधि, भस्ममहिमा, रुद्राक्षमालाधारण, पाणिपीठ पर इष्टलिंग पूजन, विरक्त शिवयोगी के लिये भिक्षाटन के नियम आदि का स्वरूप बताते हैं और कहते हैं कि देहपात पर्यन्त शिवयोगी वीरव्रत का पालन करता रहे। वीर माहेश्वरों के पांच यज्ञों[२३] का भी यहाँ निरूपण किया गया है और अन्त में इनके आठ विशेष लक्षणों को बताते हुए कहा गया है कि इन लक्षणों से सम्पन्न [२४]म्लेच्छ भी भगवान् शिव को अतिप्रिय है।

अठारहवें पटल में निर्याण याग का विधान है, जो कि वैदिक वाङ्मय में पितृमेध के नाम से वर्णित है। जब शिवभक्त यह समझे कि मेरा अन्तकाल निकट है, तो उस समय उसे क्या करना चाहिये, इस विषय को बताकर कहा गया है कि देह से प्राण का उत्क्रमण हो जाने पर शिष्य अथवा पुत्र उसका और्ध्वदेहिक कृत्य करे, विमान द्वारा मृतदेह को समाधि स्थल पर ले जाय। यहाँ मृत देह के संस्कार के लिये बनाये जाने वाले गर्त (समाधि) की निर्माण-विधि का और उसमें शव के निक्षेप का पूरा विधान विस्तार से बताया गया है। पत्नी के सहगमन की विधि का भी यहाँ वर्णन है। संस्कार-स्थल पर समाधि बनाने, वहाँ प्रारंभ में मृत्तिका-लिंग की तथा बाद में उस स्थल पर शिवालय के निर्माण की और पूजनक्रम की विधि को बताने के साथ समाधिस्थल की पूजा का स्थायी प्रबन्ध करने का भी निर्देश मिलता है। लिंग-मुद्रा से अंकित वृषभ के उत्सर्ग की विधि का तथा निर्याण याग में दीक्षित व्यक्ति के कर्तव्यों का भी निरूपण कर यहाँ बताया गया है कि अपनी शक्ति के अनुसार समाधि-स्थल पर बगीचा लगाना चाहिये। निर्याण याग के अनुष्ठान के फल का वर्णन करने के साथ यहाँ कार्तिक मास में करणीय विशेष कृत्यों का भी निरूपण किया गया है। वापी, कूप, तटाक आदि के निर्माण का तथा दीप-प्रज्वालन का भी विधान यहाँ प्रदर्शित है।

---

२१. यहाँ (१७.२९-३३) परिगणित तत्त्वों की नामावली कुछ भिन्न प्रकार की है।

२२. इस विषय का विस्तार चन्द्रज्ञानागम क्रियापाद एकादश पटल, मकुटागम क्रियापाद द्वितीय पटल तथा कारणागम तृतीय पटल में देखिये।

२३. मनुस्मृति (३.७०-७२) के अनुसार ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), पितृयज्ञ (तर्पण-श्राद्ध), देवयज्ञ (होम), भूतयज्ञ (बलि-वैश्वदेव) और नृयज्ञ (अतिथिपूजन)— ये पंचयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धान्तशिखामणि (९.२१-२५) आदि वीरशैव मत के ग्रन्थों में तप, कर्म, जप, ध्यान और ज्ञान की पंचविध शिवयज्ञ के रूप में मान्यता है। मकुटागम में (१.२.३९) मनुस्मृति-संमत तथा प्रस्तुत आगम में (१२.१३-१९; १७.८०-८२) वीरशैव मत-संमत पंचयज्ञों का विधान है। सूक्ष्मागम (६.२६-३५) में भी इन्हीं का प्रतिपादन हुआ है। शिवपुराण वायवीय संहिता के उत्तर भाग (१०.४८-५४) में ये पाशुपत व्रत के रूप में चर्चित हैं। पाशुपत मत के ग्रन्थों में इनका क्रियालक्षण योग में अन्तर्भाव है।

२४. ऊपर की १९ संख्या की टिप्पणी देखिये।

उन्नीसवें पटल में विशेषत: सिद्धिदिवस (मृत्युतिथि) पर किये जाने वाले कर्तव्यों का निरूपण है। गुरु-शिष्य परम्परा की व्याख्या करते हुए यहाँ बताया गया है कि यह परम्परा निरन्तर चलती रहती है, अत: आज का शिष्य ही कल गुरु कहलाने लगता है। विभिन्न गतियों का निरूपण करते हुए यहाँ कहा गया है कि गुरु के ऋण से मुक्ति पाने के लिये उसे अपने पूर्वजों की समाधि-स्थली पर मण्डप आदि का निर्माण कराना चाहिये, जिससे कि सामान्य जन को भी उचित सुविधा मिले। बिना जातिभेद के सबको समान समझ कर उनकी सहायता करनी चाहिये। समर्थ व्यक्ति ही यह सब कर सकता है। असमर्थ व्यक्ति के लिये भी उसके शारीरिक श्रम से सम्पन्न होने वाले परोपकार के कार्यों का वर्णन किया गया है। नारी के लिये बताया गया है कि वह अपने पति की समाधि की यावज्जीवन पूजा करे। पिता, गुरु आदि की मृत्युतिथि पर किये जाने वाले धार्मिक कृत्यों को बताकर यहाँ कहा गया है कि ये सब कार्य पूरी भक्ति और श्रद्धा के साथ करने चाहिये। व्यक्ति यहाँ जो कुछ भी अच्छा या बुरा करता है, उसमें करने वाला, कराने वाला, प्रेरणा देने वाला और उसका अनुमोदन करने वाला— इन चारों की समान भागीदारी रहती है। अत: व्यक्ति को भले काम में स्वयं भी लगना चाहिये और दूसरों को भी प्रेरित करना चाहिये। समाधि-स्थल पर दान की महिमा को बताते हुए कहा गया है कि यहाँ विद्वानों को बसाना चाहिये। विधवा स्त्री के कर्तव्यों के निरूपण के साथ यह पटल समाप्त होता है।

बीसवें पटल में दीक्षाभेदों का विधान निरूपित है। देवी प्रश्न करती है कि अनुशैव आदि छ: प्रकार के शैवों की दीक्षा एक सरीखी है या इनमें परस्पर अन्तर है ? प्रश्न का समाधान करते हुए शिव कहते हैं कि अनधिकारी व्यक्ति को दीक्षा नहीं देनी चाहिये। दीक्षा के अधिकारी का लक्षण बताते हुए वे कहते हैं कि अनुशैव आदि छ: प्रकार के शैवों को एककलशा दीक्षा दी जाती है। इसके साथ वीरशैव मत में प्रवेश के अधिकारी का लक्षण विस्तार से बताकर कहा गया है कि सामान्य वीरशैव और विशेष वीरशैव को त्रिकलशा दीक्षा और तुर्य (निराभारी) वीरशैव को पंचकलशा दीक्षा दी जाती है। इनके स्वरूप का संक्षेप में उल्लेख करने के साथ यहाँ कहा गया है कि तुर्य वीरशैव विधि और निषेध से ऊपर उठ जाता है। तुर्य वीरशैव की चर्या की और इष्टलिंग के नष्ट हो जाने पर उसके देहत्याग की पुन: यहाँ चर्चा की गई है। अष्टांग मैथुन के त्याग और दीक्षांग होम की विधि के प्रदर्शन के बाद तुर्य वीरशैव के स्वच्छन्द विचरण का यहाँ उल्लेख है। आगे देवी के प्रश्न के उत्तर में शिव कहते हैं कि योग्यतासम्पन्न व्यक्ति को व्युत्क्रम से भी दीक्षा दी जा सकती है, किन्तु सामान्यत: इन दीक्षाओं को क्रम से ही देना चाहिये। अन्त में यहाँ इन सभी दीक्षाओं की अपनी-अपनी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

इक्कीसवें पटल में ज्ञानयोग का निरूपण है। देवी ज्ञानयोग के विषय में प्रश्न करती है और उसके उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि इसी तरह का प्रश्न पहले वटपत्रशायी भगवान् कृष्ण ने मुझसे किया था। उस समय मैंने उनको जो उत्तर दिया,

उसे तुम्हें सुनाता हूँ। २८ तत्त्वों[२५] की गणना के साथ यहाँ ज्ञान का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि शिव के स्वरूप का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। बुभुक्षा, पिपासा आदि षड्विध ऊर्मियों की तथा काम, क्रोध आदि षड्विध विकारों की यहाँ पुनः चर्चा की गई है और कहा गया है कि इनसे मुक्त व्यक्ति "शिव ही सब कुछ है" इस ज्ञान के साथ योग का अभ्यास करे। यही मुक्ति का प्रमुख साधन है। यहाँ देवी प्रश्न करती है कि शिव ही जीव का स्वरूप कैसे धारण कर लेता है। उत्तर में शिव कहते हैं कि यह सारा जगत् शिव-शक्त्यात्मक है। जीवात्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए शिव कहते हैं कि माया से मोहित जीव अपने स्वरूप को भूल बैठता है। वास्तव में शिव और जीव में अणुमात्र भी अन्तर नहीं है। यह अखंड आत्मा एक लोक से लोकान्तर में कैसे जाता है? इसके उत्तर में शिव कहते हैं कि अविद्या शक्ति के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होता है। अध्यास की चर्चा करते हुए वे कहते हैं कि यह अध्यास बिम्ब-प्रतिबिम्ब न्याय से प्रवृत्त होता है और इसी के कारण जीव अपने में सुख-दुःख का अनुभव करने लगता है। वास्तव में यह सब एक प्रकार का नाटक है, बुद्धि का विलास है। एकमात्र शक्तितत्त्व ही नामरूपात्मना नाना रूपों में भासित होने लगता है।

ऊपर के पटल में ज्ञान और योग का निरूपण किया गया है। अब **बाइसवें पटल** में बताया जा रहा है कि उनकी भी अपेक्षा भक्ति अधिक श्रेष्ठ है। निरपेक्ष भक्त की सर्वोत्तमता को बताते हुए यहाँ भक्ति की महिमा गाई गई है। भगवान् शिव कहते हैं कि कर्मयोगी और ज्ञानयोगी की अपेक्षा भक्त मुझे अधिक प्रिय है। भक्तिपूर्वक समर्पित वस्तु का अक्षय फल मिलता है। भक्तिदशा की प्राप्ति ईश्वर का वरदान है। शिव कहते हैं कि मैं स्वयं भी भक्त के वश में हो जाता हूँ। अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, यह शिवभक्ति ही मुक्ति मानी जाती है। देवी पार्वती के प्रश्न के उत्तर में भगवान् शिव भक्ति के लक्षणों का विस्तार से वर्णन करते हैं। भक्ति के लक्षणों में [२६]अष्टांग प्रणाम का भी उल्लेख है। वे यह भी कहते हैं कि इस भक्ति के वेग में भक्त मुक्ति को भी कुछ नहीं समझता, अणिमा आदि सिद्धियों की तो कथा ही क्या है? इस पर देवी पुनः प्रश्न करती हैं कि यह भक्ति किस प्रकार से उत्पन्न होती है? उत्तर में शिव कहते हैं कि इसके लिये गुरु की सेवा सर्वश्रेष्ठ उपाय है। गुरु को ईश्वर मान कर उनकी मन, वचन और शरीर से सेवा करनी चाहिये। इस भक्ति के अभ्यास से ज्ञान और योग में भी मनुष्य को दृढता प्राप्त होती है। भक्ति के अभाव में मनुष्य कैसे दुःख भोगता है, इसको भी यहाँ स्पष्ट किया गया है। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जब भक्ति ही ईश्वर की प्राप्ति का एकमात्र उपाय है, तो इतने सारे मतभेद क्यों प्रवृत्त हो गये हैं? और भक्तिहीन पुरुष के द्वारा धारित इष्टलिंग से मुक्ति मिलेगी या नहीं? इस पर शिव

---

२५. इस विषय को विस्तार से समझने के लिये "आगम और तन्त्रशास्त्र" में प्रकाशित "भागवत की तत्त्वसमन्वय प्रक्रिया" शीर्षक निबन्ध देखिये (पृ. १३१-१४१)।

२६. यहाँ टिप्पणी में (पृ. ३७७) अष्टांग और पंचांग प्रणाम के लक्षण दिये गये हैं। निगमागम शास्त्र के महान् विद्वान् श्रीमान् अप्पय दीक्षित ने शिवार्चनचन्द्रिका के प्रणामविधि प्रकरण (पृ. १००-१०१) में चतुर्विध (अष्टांग, पंचाग, त्र्यंग और एकांग) प्रणाम का निरूपण किया है।

उत्तर देते हैं कि इष्टलिंग के धारणमात्र से मनुष्य अवश्य मुक्ति की ओर बढ़ता है। इससे मनुष्य के हृदय में ईश्वर के प्रति भक्तिभाव का उदय होता है। मतभेदों का निरूपण सीढ़ियों पर चढ़ने के समान है और एक के बाद दूसरी सीढ़ी का अपनी योग्यता के अनुसार सहारा लेता हुआ वह अन्ततः परम गुह्य शिवज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। शिवज्ञान के अंगों का यहाँ विशद विवेचन किया गया है और कहा गया है कि इनके सहारे मनुष्य का मन स्थिर हो जाता है। यह चित्त की स्थिरता ही सर्वश्रेष्ठ योग है। अन्ततः वह शिवभक्त मेरा आश्रय ग्रहण कर मुक्त हो जाता है। यहाँ जगत् को मिथ्या इस अभिप्राय से बताया गया है कि वास्तव में उसकी कोई सत्ता नहीं है। यह तो मात्र शिव का नाटक है।

अन्तिम **तेईसवें पटल** के प्रारंभ में देवी भगवान् से प्रश्न करती है कि आप तो निर्लेप हैं, निसंग हैं। तब आप इस जगत् के आधार कैसे हो सकते हैं? इस पर भगवान् शिव आकाश, वायु, पर्वत आदि का दृष्टान्त देकर इस बात को सिद्ध करते हैं कि कैसे भगवान् शिव इस जगत् के अधिष्ठाता, कर्ता और उपादान भी बनते हैं। इस पर देवी पुनः प्रश्न करती है कि जगत् की स्थिति के रहते आपकी अद्वयता कैसे बनी रह सकती है? इस पर "मृत्तिकेत्येव सत्यम्" इत्यादि उपनिषद् वचन को उद्धृत करते हुए वे बताते हैं कि वास्तव में नामरूपात्मक यह जगत् कल्पनामात्र है। समुद्र में उठे बुदबुदों के समान यह सारा जगत् उस सुखसागर शिव से ही निकलता है और उसी में लीन हो जाता है। इस पर देवी यह कहती हुई विराम लेती है कि परतन्त्र प्रकृति का यह कार्य नहीं हो सकता। उसके प्रेरक के रूप में तो आपकी सत्ता सर्वोपरि है।

इस प्रकार संक्षेप में सारे ग्रन्थ का सार यहाँ प्रस्तुत कर दिया गया है। यदि हम इस पर विहंगम दृष्टि डालें, तो देखेंगे कि यहाँ सभी तान्त्रिक मतवादों का संक्षेप में उल्लेख हुआ है और उनमें से [२७]सात शैव मतों की पूरे ग्रन्थ में अनेक बार चर्चा इस अभिप्राय से हुई है कि वीरशैव मत में और उसमें भी निराभारी वीरशैव की तुर्यावस्था तक पहुँचने में ये सोपान का कार्य करते हैं। वीरशैव और निराभारी वीरशैव के लक्षण, चर्या, महिमा और वैशिष्ट्य की यहाँ अनेक स्थलों पर चर्चा की गई है। यहाँ (१.१०३) स्पष्ट घोषणा की गई है कि शैव और पाशुपत मत में कोई भेद नहीं है। षट्स्थल सिद्धान्त के प्रसंग में षड्विध अंगों और उपांगों का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता। यहाँ षडूर्मियों और [२८]अरिषड्वर्ग का भी उल्लेख है, जिस पर विजय पाना आध्यात्मिक मार्ग की प्रथम वरीयता है। लिंग, सज्जिका, शिवदोरक आदि से संबद्ध सामग्री भी यहाँ पर्याप्त मिलती है। अलग-अलग पटलों में इनका निरूपण हुआ है। इष्टलिंग, शिवमन्त्र, दीक्षा आदि का ग्रहण गुरु से ही किया जाता है, अतः योग्य गुरु और शिष्य दोनों के लक्षण भी यहाँ बताये गये हैं। गुरु की महिमा का यहाँ अनेक स्थलों पर निरूपण किया गया है। आध्यात्मिक मार्ग पर अग्रसर हुए व्यक्ति के लिये अनेक स्थलों पर (पृ. २६२, ३३९, ३४१, ३४४, ३५६, ३८७) "गुरुतः शास्त्रतः स्वतः" इस किरणागम के वचन की गूंज सुनाई

२७. ऊपर की तीसरी टिप्पणी देखिये।

२८. न्यायदर्शन (४.१.३-६) में दोषों के अन्तर्गत इनका विवरण मिलता हैं इनमें से मोह को वहाँ पापीयान् बताया गया है।

पड़ती है। इस विषय पर अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक और उसकी जयरथ रचित टीका में (४.४१-७८) पर्याप्त विचार किया गया है। हमने भी लुप्तागमसंग्रह द्वितीय भाग के उपोद्घात (पृ. २१६-१७) में "सत्तर्कस्वानुभवयोर्गरीयस्त्वम्" शीर्षक के अन्तर्गत इस विषय पर विचार किया है। सन्त [२९]ज्ञानेश्वर का अमृतानुभव तो प्रसिद्ध ही है।

दीक्षाविधि के प्रसंग में इष्टलिंग, विभूति और रुद्राक्ष धारण एवं मन्त्रजप आदि पर यहाँ पर्याप्त सामग्री मिलती है। करपंकज-पूजा के प्रसंग में यहाँ समस्त देवताओं और तीर्थों की स्थिति बताई गई है और कहा गया है कि इस पीठ पर की गई इष्टलिंग की पूजा सर्वश्रेष्ठ है। इसी तरह से दीक्षांग होम की पूरी पद्धति वैदिक विधि-विधान के अनुसार की गई है। आजकल संस्कृत भाषा और वैदिक विधि-विधानों का मजाक उड़ाना एक साधारण बात हो गई है। यह हमारे ऊपर बाह्य अपसंस्कृति का प्रभाव है। अभी कुछ साल पहले नादेड़ (महाराष्ट्र) में वीरशैव शिवाचार्यों के द्वारा एक यज्ञ का आयोजन किया गया था। उसके विरुद्ध वहाँ आश्चर्यजनक प्रचार हुआ। प्रमाण माँगे गये। ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत आगम के चतुर्थ पटल का एक बार अवलोकन कर लेना चाहिये। वहाँ की धार्मिक सभाओं में यह भी सुनाई पड़ा कि इस्लाम और ईसाई धर्म में एक ही ईश्वर मान्य है। इसके विपरीत भारतीय धर्मों में ईश्वरों की संख्या का कोई ठिकाना नहीं है। इस दुष्प्रचार का सीधा अर्थ यह है कि सारी मानव जाति को इन दो धर्मों की शरण में आ जाना चाहिये। क्या इससे मानव जाति को शान्ति मिल सकेगी ? क्या ऐसा करने से पूरी मानवता को भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी देन विचार की स्वतन्त्रता बची रह सकेगी। अनेकता में एकता को देखना ही भारतीय दर्शन का निष्कर्ष है। इसके लिये सहिष्णुता अपेक्षित है। एकदेवतावाद सहिष्णुता और समन्वय को जन्म नहीं दे सकता। वह तो एक दूसरे पर अपने विचार जबर्दस्ती लादने का ही प्रयत्न करता रहेगा। फलतः मानव मन सदा अशान्त रहेगा। धर्मान्तरण इसी की परिणति है, जिसके घेरे में अब बौद्ध धर्म भी आ गया है।

भारतीय धर्म और दर्शन अशान्त मानव मन को शान्ति की ओर ले जाने की प्रमुख रूप से शिक्षा देते हैं। इनका उद्घोष है कि साधक एक ही जन्म में देवस्वरूप बन सकता है। इसके लिये वह किसी भी इष्टदेव का सहारा ले सकता है। प्रस्तुत आगम (१९. ८६) में भी शैव, वैष्णव आदि छः मतों (षण्मत) की चर्चा है। यहाँ (१७.१९-२१) तो यह भी कहा गया है कि एक ही परिवार में पति शिव की और पत्नी विष्णु की अथवा पति विष्णु की और पत्नी शिव की आराधना कर सकती है। आज इसी सहिष्णुता-प्रधान दृष्टि की हमें अपेक्षा है। आगम और तन्त्रशास्त्र ने सभी भारतीय धर्मों और मतवादों में अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया है। इस विषय पर केन्द्रीय तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ में दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोधयोजना की ओर से सम्पन्न हुई "भारतीय तन्त्रशास्त्र"

---

२९. डॉ. प्रभाकर सदाशिव पण्डित, आमलनेर के हिन्दी अनुवाद के साथ यह ग्रन्थ हिन्दी कुटीर, बुलानाला, वाराणसी से प्रकाशित है।

विषयक कार्यशाला में पर्याप्त विचार हुआ है। इस कार्यशाला का पूरा विवरण शीघ्र प्रकाशित होगा।

आगम ग्रन्थों को देखने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ जाति की अपेक्षा गुणों पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रस्तुत आगम में ऐसे अनेक स्थल (पृ. १०, ७६, ११७, २७२, ३१३, ३२४) आपको देखने को मिलेंगे। इस आगम का तो यहाँ तक कहना है कि वीर माहेश्वरों के आठ लक्षणों से सम्पन्न [३०]चाण्डाल भी शिव को अत्यन्त प्रिय है। मकुटागम की प्रस्तावना में इस विषय पर पर्याप्त विचार किया जा चुका है। भारत की विभिन्न भाषाओं में विकसित सन्तों के विचारों पर आगम-तन्त्रशास्त्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही उनके प्रेरणास्रोत हैं, इस पर भी हम लिख चुके हैं। पूरी भारतीय प्रजा को आगमशास्त्र का यह संदेश है कि बिना किसी धार्मिक मतभेद के वेद से लेकर सन्तों की वाणियों तक के पूरे भारतीय वाङ्मय का आदर करना चाहिये। ब्राह्मणवाद, मनुवाद जैसे अपसंस्कृति से प्रसूत शब्दों के प्रभाव को आगमशास्त्र की यह विचारधारा ही नियंत्रित कर सकती है।

दसवें पटल में शिवयोग के अष्टांगों का निरूपण पातंजल योग से भिन्न पद्धति से किया गया है। [३१]जप की भी योगांगता आगम शास्त्रों में वर्णित है। ज्ञान और योग की परस्पर सापेक्षता का और भक्तियोग का यहाँ १२वें और २१वें पटल में तथा भक्ति की श्रेष्ठता का २२वें पटल में निरूपण हुआ है। आगमों के ज्ञान, योग, क्रिया और चर्या नामक चार अंगों की भी यहाँ चर्चा है। आगमों में प्रतिपादित दर्शन की यह विशेषता है कि यह सामान्य मनुष्य की भी समझ में बड़ी सरलता से आ जाता है। अत्यन्त सरल भाषा में यहाँ उन सभी उदात्त भावनाओं का संक्षेप में प्रतिपादन कर दिया गया है, जो कि मानव की आध्यात्मिक उन्नति में परम सहायक होते हैं। [३२]यहाँ कहा गया है कि मनुष्य को अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति के प्रति द्वेषभाव नहीं रखना चाहिये, समान स्तर के मनुष्यों के प्रति असूया (निन्दा) का भाव नहीं रखना चाहिये और उसे हीन कोटि के मनुष्यों का अपमान नहीं करना चाहिये। महाकवि मातृचेट के अध्यर्धशतक में इसी अभिप्राय का श्लोक मिलता है, इसकी सूचना हम पृ. १२९ की टिप्पणी में दे चुके हैं।

---

३०. ऊपर की १९ संख्या की टिप्पणी देखिये।

३१. पाशुपत मत में जप को क्रियालक्षण योग का एक अंग माना है। पाशुपत सूत्र (५.२१-२३) में बताया गया है कि मन्त्र के पाठ से और ॐकार में ध्यान एवं धारणा को स्थिर करने पर साधक निष्ठा योग की सहायता से रुद्र के सायुज्य को प्राप्त करता है। "तज्जपस्तदर्थभावनम्" (१.२८) इस योगसूत्र का भी यही अभिप्राय है। जप की यह योगांगता वैष्णव और शैव आगमों में भी वर्णित है (देखिये— जयाख्यसंहिता, ३३.११ और मृगेन्द्रागम योगपाद, श्लो. ३)। लक्ष्मीतन्त्र (३९.३५) में वाचिक, उपांशु और मानस नामक भेदों के अतिरिक्त जप का ध्यानात्मक चौथा प्रकार भी वर्णित है। ऐसा लगता है कि जप की योगांगता का सर्वप्रथम निरूपण पाशुपत मत में हुआ। चन्द्रज्ञानागम (९.८.६१-६४) आदि में सगर्भ-अगर्भ और सध्यान जप का भी निरूपण है। प्रस्तुत आगम (११.८९-९२) में भी जप के ये पंचविध भेद निरूपित हैं।

३२. "अद्वेष्टारोऽधिके स्वस्मात् स्वसमेष्वनसूयवः। अतिरस्कारिणो न्यूने वीरास्ते शिवयोगिनः।।" (८.१९)।

बहुत थोड़े शब्दों में मानव मन को श्रेष्ठता की ओर उन्मुख करने का यह एक महान् मन्त्र है। क्या मानव इस शिक्षा को अपने मन में उतार सकेगा?

शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की शोध ग्रन्थमाला में भाषानुवाद और अंग्रेजी अनुवाद के साथ आगम-ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना है। तदनुसार गत वर्ष भाषानुवाद के साथ चन्द्रज्ञानागम, सूक्ष्मागम, मकुटागम और कारणागम का प्रकाशन हुआ था। आज शिवरात्रि के पावन पर्व पर पारमेश्वरागम का भाषानुवाद के साथ नवीन संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है। काशी ज्ञानसिंहासन के वर्तमान जगद्गुरु श्री १००८ डॉ. चन्द्रशेखर शिवाचार्य महास्वामी जी की प्रेरणा से यह ज्ञानसत्र प्रवृत्त है और इसकी विशेषता यह है कि ग्रन्थ-प्रकाशन के सभी स्तरों पर, विशेष कर वीरशैव धर्म-दर्शन के जटिल स्थलों को सुबोध भाषा में समझाने में महास्वामीजी का महनीय सहयोग रहता है। पूरे ग्रन्थ पर और भाषानुवाद पर उनकी सूक्ष्मेक्षिका समस्त दोषों को दूर कर देती है। बचे-खुचे दोषों का परिहार मुद्रण के अवसर पर पड़ी पण्डित जनार्दन शास्त्री पाण्डेय जी की पैनी दृष्टि ने कर दिया है। जंगमवाड़ी मठ में शोधरत और अध्ययनरत सुबुद्ध छात्रों ने भी अपनी-अपनी आहुतियाँ इसमें दी हैं और इन्हीं के प्रयासों की समष्टि का यह फल चिन्तनशील पाठकों के सामने प्रस्तुत है। वे ही इस ज्ञानसत्र की सांगता और निरंगता में प्रमाण हैं। हमें आशा है कि वे भी इस ज्ञानसत्र की त्रुटियों के परिमार्जन में अपना महनीय सहयोग देंगे।

प्रेस कापी तैयार हो जाने के बाद बाकी चार ग्रन्थों से पाठ-संकलन, टिप्पणी-लेखन, श्लोकार्धसूची निर्माण आदि सभी कार्यों में हिरेहाल सिरिगेरी के श्री मरुलसिद्ध शिवाचार्य स्वामी जी का, श्लोकार्धसूची को अकारादि क्रम से संयोजित करने में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के आगम प्राध्यापक डॉ. शीतलाप्रसाद उपाध्याय और सिद्धराम देव हिप्परगि का विशेष सहयोग रहा है। इन कार्यों के संपादन में श्री सिद्धराम देव सुरकोड़, श्री सिद्धराम शिवाचार्य स्वामी सुल्ला, श्री तोण्टदार्य देव मरेगुद्दि ने भी यथासमय अपने को प्रस्तुत किया है। वीरशैव धर्म-दर्शन के प्रचार और प्रसार में अनवरत लगे हुए इन आचार्यों का दक्षिण में कितना सम्मान है, उत्तर भारत के लोग उसकी कल्पना नहीं कर सकते। अपने विद्यागुरुओं के प्रति भी ये उतने ही विनयावनत हैं, यह एक सुखद आश्चर्य है, जो कि उत्तर भारत में अब लुप्त होता जा रहा है। हम इन सबके प्रति शैवभारती शोधप्रतिष्ठान की ओर से आभार व्यक्त करते हैं।

शैवभारती शोध प्रतिष्ठान	विद्वद्वशंवद
जंगमवाड़ी मठ, वाराणसी	**व्रजवल्लभ द्विवेदी**
महाशिवरात्रि, संवत २०५०	निदेशक

विषयानुक्रमणी

परिशिष्टभागः